स्त्री-विमर्श: वैदिक ऋषिकाओं के सन्दर्भ

प्रो. सरोज कौशल
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, अधिष्ठाता, कला संकाय,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

ऋग्वेद में ऋषिकाओं तथा तद्रचित सूक्तों पर विमर्श की महती अपेक्षा है। ऋग्वेद-संहिता में 'अदिति' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मन्त्रद्रष्टा नारियों में अदिति ही एक ऐसी ऋषिका है जिसका लगभग 80 बार नाम्ना कथन किया गया है। ऋग्वेद चतुर्थ मण्डल के अठारहवें सूक्त की पाँचवीं, छठी एवं सातवीं ऋचायें अदिति द्वारा साक्षात्कृत हैं। अदिति एक मन्त्रद्रष्टा ऋषिका है जिसने अपनी तपश्चर्या से ऋग्वेद के दशम मण्डल के 72वें सूक्त के सम्पूर्ण नौ मन्त्रों का साक्षात्कार किया। इस सूक्त के चतुर्थ, पञ्चम, अष्टम तथा नवम मन्त्रों में 'अदिति' पद का भी उल्लेख है।

अदिति शब्द का वास्तविक अर्थ है - सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, बन्धनों से सर्वथा मुक्त। ऋग्वेद के दशम मण्डल में अदिति को 'सर्वतातिम्'[1] अर्थात् 'सर्वग्राहिणी' कहा गया है। अदिति के लिए 'विश्वजन्या' अर्थात् 'विश्वहितैषिणी' पद का प्रयोग किया गयाथ है। अदिति को 'उरुव्यचा' अर्थात् अतिविस्तीर्णा माना गया है। अदिति यहाँ स्त्रीजाति का उपलक्षणरूपा है। स्त्रियों का स्वरूप विश्वहितेच्छु होना चाहिए अथवा विश्वहितैषिणी तो स्त्री ही हो सकती है क्योंकि दया, ममता करुणा आदि गुण उसे जन्मतः ही प्राप्त हुए हैं। अदिति की महनीयता के कारण ही उसे अखण्डनीया अदीना आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। अदिति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता, सभी जातियाँ अर्थात् जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है और जो भी भविष्य में उत्पन्न होगा, वह सभी अदिति का ही रूप है। इस मन्त्र में 'द्यौः' ब्रह्म का सूचक है और इसके अतिरिक्त अन्तरिक्ष को प्रथम, माता को द्वितीय, पिता को तृतीय, पुत्र को चतुर्थ,

सम्पूर्ण देवताओं को पञ्चम, उत्पन्न हुए प्राणिवर्ग को षष्ठ तथा जनिष्यमाण जीवांश को सप्तम सप्तक मानकर सर्वत्र 'अदिति' के प्रभुत्व की स्थापना की गई है।

वैदिक ऋषि ने रूपक की कल्पना कर अदिति की श्रेष्ठकर्म - प्रतिपादिका रूप भूमिका का मनोरम वर्णन किया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में अदिति को एक सुन्दर नौका के रूप में कल्पित कर ऋषि कहते हैं - मङ्गलमयी, सुखदायिनी, सुप्रणीत यह अदितिरूपी नौका दुःखों से बचाती है। यह नौका निरापद है क्योंकि इसमें कभी भी छिद्र होने की आशंका नहीं है। छिद्राभाव में इस नौका में कभी बाहरी जल नहीं भर सकता है; जिसके कारण उसके डूबने का भय हो। ऋषि ने कल्याण चाहने वालों को इस नौका में आरूढ़ होने का आह्वान किया -

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये।।[2]

'हम सब आकाशरूपवाली मङ्गलमयी नौका पर सवार हाकर देवत्व को प्राप्त करें।' इस नाव पर बैठने से किसी प्रकार की अरक्षा की शंका नहीं हो सकती । इस नौका की यात्रा बहुत आनन्दवर्धक है। कभी न नष्ट होने वाली यह नौका बहुत विशाल और सुदृढ है। निर्दोष यह नौका अपनी निष्कलंकता के कारण आरूढ़ होने वालों को निर्बाध गति से उस परम लक्ष्य तक पहुँचाने में सक्षम है।

यद्यपि अदिति के अनेक रूपाकारों का ऋग्वेद निरूपण करता है तथापि उसका नारीत्व सर्वत्र अपनी कवितामयी कमनीयता से विश्व का मंगल करता हुआ प्रतीत होता है। अदिति के लिए प्रयुक्त विशेषण बन्धनमुक्त ; स्वाधीन वैदिककालीन नारी की स्वतन्त्रता के सूचक हैं। अदिति की व्यापकता गुणान्वितता संहिता-युग के नारी-समाज के प्रभुत्व की प्रतिपादिका है।

अपाला – अपनी तपश्चर्या से अपाला से सुपाला बनने वाली कन्यारत्न अपाला ब्रह्मवादिनी के रूप में सुप्रथित है। इन्होंने अपनी तपश्चर्या के प्रभाव से ऋग्वेद के आठवें मण्डल के 91 वें सूक्त की ऋचाओं का साक्षात्कार किया। सायणाचार्य ने अपाला के जीवन-वृत्त का विशद निरूपण करते हुए बताया कि महर्षि अत्रि के घर अपाला का आविर्भाव हुआ । जब वह कुछ बड़ी हुई तो उसके शरीर पर ऋषि को कुष्ठ के चिह्न दृष्टिगोचर

हुए, उनको किसी भी प्रकार ठीक नहीं किया जा सका तो उन्होंने अपाला को आन्तरिक बोध से अलौकिक बनाने का निर्णय किया।

महर्षि अत्रि की विलक्षण शिक्षणपद्धति से अल्पकाल में ही अपाला एक अद्वितीया विदुषी बन गयी। तदनन्तर ऋषि कृशाश्व से उसका विवाह सम्पन्न हुआ - परन्तु ऋषि उसके प्रति उदासीन ही रहे - इस उदासीनता के फलस्वरूप अपाला ने तपस्या को ही जीवन का ध्येय बना लिया। क्योंकि तपस्यारूपी अनल में तपकर मानव का व्यक्तित्व उदात्त हो जाता है।

अपाला ने अपनी साधना से यह सिद्ध कर दिया कि वैदिक संहिताकाल की नारियाँ पुरुष के पौरुष को भी चुनौती देने में समर्थ थीं। वे अपमानित होकर भी अवसाद-मग्न नहीं हुईं। जीवन को उन्होंने व्यर्थ नहीं किया अपितु अनवरत उदात्तता के नूतन प्रतिमान रचे।

कन्या वारवायती सोममपि सुताविदत्।

अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा।[3]

घोषा – वैदिक संहिता-युग में वेद-प्रचारिका ब्रह्मचारिणी कन्या ही 'घोषा' इस नाम की अधिकारिणी थी। घोषा को ज्ञान-धारा पैतृक - परम्परा से प्राप्त हुई थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्त 39 तथा 40 की सभी ऋचाओं के साक्षात्कार का श्रेय 'घोषा' को जाता है। इन दोनों सूक्तों में 28 मन्त्र हैं, जिनमें कन्याओं के लिए वेदाध्ययन से लेकर गृहस्थाश्रम - प्रवेश पर्यन्त - समस्त कार्यों को सुचारु करने का विधान है।

इन सूक्तों में घोषा ने अश्विनीकुमारों से विविध प्रकार की प्रार्थनायें की हैं- 'हे देव ! आप दोनों हमें मधुर बोलने की प्रेरणा दें और हमारी मनोकामनायें पूर्ण करें। हम आपकी उपासिकायें हैं और मुख्य रूप से तीन पदार्थों की कामना करती हैं- '

1. सत्य और मधुर वचन की।
2. कर्म की पूर्णता की।
3. विविध प्रकार की बुद्धि की।

घोषा के द्वारा दृष्ट / साक्षात्कृत सूक्तों में भाव तथा भाषा का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। घोषा कहती हैं - हे सत्यस्वरूप ! हमें ऐसे उपाय बताइये जिससे हमारे विरोधी भी हमारे प्रति श्रद्धावान् हो जायें।

हे देवद्वय ! आप हमारी प्रार्थना को सुनें और हमें उसी प्रकार शिक्षा दें, जिस प्रकार माता-पिता अपनी सन्तान को शिक्षा देते हैं।[4] इसी सूक्त में कहा गया है - हे अश्विनीकुमारों ! जिस प्रकार कुशल कारीगर / शिल्पी रथ बनाता है, उसी प्रकार हम आपके लिए सुन्दर संस्कारयुक्त स्तुति की रचना करती हैं। वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या जिस प्रकार वर के पास प्रेषित की जाती है। वैसे ही हम अलंकारादि से विभूषित कमनीय कविता को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

घोषा की मन्त्रों के द्वारा जो घोषणायें हैं वे दार्शनिकता की ओर भी अभिप्रेरित करती हैं-

मैं राजकन्या घोषा सर्वत्र वेद की घोषणा करने वाली, वेद का सन्देश सर्वत्र पहुँचाने वाली स्तुति पाठिका हूँ। आप सदा मेरे पास रह कर मेरे इन इन्द्रिय रूपी अश्वों से युक्त शरीररूपी रथ के साथ मेरे मनरूपी अश्व का दमन करें।

यहाँ घोषा मनरूपी अश्व के दमन से व्यक्तित्व के उदात्तीकरण को रेखांकित करती हैं। यह उदात्तता केवल उस कोटि के प्राणियों में सम्भव है जो आध्यात्मिक दृष्टि से विशिष्ट सर्जनात्मक होते हैं। जिस आत्मानुशासन की अपेक्षा यहाँ स्त्री को स्वयं से है, वह परिष्कृत मनीषा वाली समधीत स्त्रियों की एक पूरी परम्परा की ओर हमारा ध्यानाकर्षण करती है जो ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं और इस निश्चिन्तिता से शास्त्रार्थ करती हुई दिग्भ्रमण करती थीं जैसे आज की विदुषियाँ।

वे कहती हैं - हे नायकरूप अश्विनीकुमारों ! जिस प्रकार शिकारी बड़े-बड़े सिंहों की मृगया में खोज करते हैं, वैसे ही हम ब्रह्मचारिणी कन्यायें भी रात-दिन प्रेम-पूरित हविष्य द्वारा आपका आह्वान करती हैं।

किन्तु ये ब्रह्मचारिणी कन्यायें जीवन के भौतिक सुखों के सन्धान से एकदम विरत रखी गयी हों - ऐसा भी नहीं है। घोषा अश्विनीकुमारों से प्रार्थना करती हुई कहती हैं-

जीवं रूदतिवि मन्यन्ते अध्वरे दीर्घामनुप्रसीति दीधियुनरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिमेमयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे।।[5]

जब भी कोई ब्रह्मवादिनी ब्रह्मचारिणी नारी लक्षणों से सम्पन्न होकर कमनीय वर की इच्छा करे, उसे उसकी मनोदशा के अनुकूल वर मिले। पति के घर वधू को जीवन के सभी साधन सुलभ रहें और सदा उस घर में दया, परोपकार, उदारता, और शालीनता आदि गुण नदी के प्रवाह के समान गतिशील बने रहें। यहाँ रोचकता इस बात में है कि अनुकूल संसाधन तथा वातावरण उपलब्ध कराने की अपेक्षा केवल वर से ही नहीं अपितु पूरे घर से की गई है। घर के एक-एक व्यक्ति से यह आशा की गई है कि वह स्त्री को विकास का अनुकूल परिवेश दे।

यही घर विकसित होकर समाज बनता है जिसके बारे में स्त्री आश्वस्त होना चाहती है कि इससे उसका हितसम्वर्धन अवश्यम्भावी है।

घोषा-दृष्ट सूक्तों मे सुन्दर शैली से सत्य वाणी, श्रेष्ठ कर्म एवं प्रखर बुद्धि का प्रतिपादन किया गया है। सोम का उपमान प्रस्तुत कर पति प्रेम की कल्पना निःसंदेह घोषा के पाण्डित्य की सूचक है। जिस प्रकार सोमपान करने के पश्चात् मनुष्य की इच्छा अन्यत्र नहीं होती, ठीक उसी प्रकार विवाहोत्सव सम्पन्न होने के बाद पुरुष की भी अपनी सहधर्मिणी के अतिरिक्त अन्य स्त्री में रुचि न हो।

जुहू – सूक्तगत मन्त्रों का मनन - दर्शन करने वाली नारियों में अग्रगण्यनाम है 'जुहू'। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 109 वें सूक्त के सभी 7 मन्त्रों की ऋषिका 'जुहू' ही हैं। सम्भवतः नर-नारियों में वैदिक प्रचार करने के कारण ही 'जुहू' इस उपाधि से इन्हें अलंकृत किया गया होगा।

जुहू द्वारा दृष्ट ऋग्वेदीय 10/109वें सूक्त का सारगर्भित संदेश हमें रोमांचित कर देता है - यह मनुष्य जाति महान् कौतुकशालिनी है और ईश्वर की महिमा प्रकट करने वाली है। ईश्वर की सत्ता को मानने वाली यह मानव जाति जब कभी भौतिकवाद की चकाचौंध में पथभ्रष्ट हो जाती है तो उस समय विद्वानों को एक स्थान पर एकत्रित होकर सत्य का अन्वेषण करना चाहिए।

जुहू ने कर्मत्याग करने वाले व्यक्ति से प्रायश्चित कराने हेतु क्या करना चाहिए -इसका विशद निरूपण किया है। निर्णायक मण्डल में नर और नारी दोनों की आवश्यकता पर बल दिया है। दूरदृष्टि, दृढ़ निश्चय, विस्तृत और व्यापक दृष्टि, धर्मपरायणता आदि से ही सम्यक् निर्णय सम्भव है। पक्षपाती कूपमण्डूक, चाटुकार, अन्याय के समक्ष सिर झुकाने वाले व्यक्ति कभी सही निर्णय नहीं ले सकते। तप के प्रभाव से कभी-कभी निम्नस्तर का

व्यक्ति भी उच्च स्थान तक पहुँच जाता है। इस मन्त्र में जुहू का अपने पति (बृहस्पति) के प्रति कितना तीक्ष्ण व्यङ्ग्य है, जो नारी की निर्भीकता को रेखांकित करता है। ये सूक्त अपने आविर्भाव से लेकर अद्यावधिपर्यन्त उतने ही प्रेरणादयक एवं सहायक हैं जितना कि वैदिक काल में थे।

रोमशा – 1/126वें सूक्त की साक्षात्कर्त्री हैं। वेद-वेदांग के प्रचार करने हेतु अनेक प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वेद और वेदांग इस नारी के रोमवत् थे अर्थात् इसके कण्ठ थे। सम्भवतः इसीलिए इसका नाम ही रोमशा पड़ गया।

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्याऽत।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ययुः।
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम्।

रोमशा शब्द पहले विशेषणरूप में ही आया होगा, जिसका प्रयोग बाद मे इस मन्त्रद्रष्ट्री नारी के लिए रूढ़ हो गया। इस सूक्त में रोमशा रूपी बुद्धि का बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया गया है। सिन्धु नदी के तटवर्ती भू-भाग के स्वामी भावयव्य ने बुद्धिसाधिका रोमशा की प्राप्ति हेतु सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया था। यश की कामना करने वाले राजा से प्रभावित होकर अन्त में रोमशा ने उसे स्वीकार कर लिया। स्वामी ने भी अपनी सहधर्मिणी की प्रशंसा करते हुए कहा है - 'मेरी पत्नी गृहस्वामिनी के रूप में मुझे सैंकड़ों प्रकार के भोग्य - पदार्थ और ऐश्वर्य देती हैं। यह मेरी अत्यन्त प्रिय सहधर्मिणी है।'

लोपामुद्रा – 1/179 - सूक्त का साक्षात्कार। वैदिक - संहिताओं की मन्त्रद्रष्टा नारियों में लोपामुद्रा का स्थान निःसन्देह वैशिष्ट्य रखता है। विदर्भराज के ऐश्वर्य में लालित - पालित - पोषित पुत्री अपने माता-पिता को चिन्तामुक्त करने हेतु वनवासी अगस्त्य से विवाह करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करती।

हजार पुत्रों की अपेक्षा एक ही राष्ट्रभक्त, समाजसेवी, चरित्रवान्, विद्वान् पुत्र श्रेष्ठ है जो माता-पिता के दोनों कुलों का मस्तिष्क ऊँचा कर देता है। ईश्वराराधना और गृहस्थाश्रम की परम्परा का निर्वाह एक साथ कैसे हो सकता है, कामवासनाओं और मानसिक दुर्बलताओं को कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है, इत्यादि सद्गुणों अथवा जीवन के सूत्रों का यदि कहीं एकत्र दर्शन होता है तो वह स्थान है - लोपामुद्रा का आश्रम।

वागाम्भृणी – अम्भृण ऋषि की पुत्री होने के कारण वागाम्भृणी 10/125 सूक्त की द्रष्टा है। यह सूक्त स्त्री - स्वाभिमान की पवित्र संहिता है। यह संहिता अद्वैतवाद की मूल जननी है, जिसने शङ्कराचार्य को एक ऐसा, वैचारिक मन्त्र सौंपा, जिससे वे सनातनधर्म की पुनः आधारशिला स्थापित कर पाये। ऐसा प्रतीत होता है कि अम्भृण ऋषि की इस पुत्री ने अपने समय में अपनी वाणी के बल से सभी को पराभूत कर दिया । वाग्देवी के रूप में सुप्रथित इस ऋषिका ने स्वयं को राष्ट्री अर्थात् राज्यों की अधिष्ठात्री बताया -

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।[6]

यह ऐसी शक्तिशालिनी है कि इनकी कृपा से ही मानव बलवान्, मेधावी, स्तोता अथवा कवि हो सकता है। सम्पूर्ण विश्व का सन्मार्ग प्रवर्तिका वाक्देवता वस्तुतः महामहिमाशालिनी हैं। उनकी एक-एक उक्ति हमें वैचारिक और सर्जनात्मक उदात्तता प्रदान करती है-

मैं जब सर्जना करती हूँ तो मेरी गति वायु के समान होती है। मैं अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों से महिमामयी होकर आकाश, पृथिवी की सीमाओं को भी लाँघ चुकी हूँ।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एनां पृथिव्यैतावती महिना संबभूव।।[7]

सर्जना करते हुए वायु के समान गति होना - इसका अर्थ है कि सर्जना में पूरे ध्यान को एकाग्र कर उसका चहुँदिश प्रसार करना। वायु की गति सर्वाधिक तीव्र मानी जाती है। इसलिए वायु से उपमा प्रदान की गई। प्रत्येक सर्जना में पराकाष्ठा को प्राप्त करना तदनन्तर उस पराकाष्ठा का भी अतिक्रमण कर देना - यह एक ऐसी अवधारणा है जो कि अभिप्रेरणीय है।

इस प्रकार की सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी इयत्ता स्थापित करने के लिए स्त्रियाँ कभी कभी तटस्थता का आचरण करने के लिए बाधित हो जाती थीं, बृहत्तर उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें मोह-माया-ममता आदि स्त्रीसम्मत भावनाओं का परिलंघन भी साधक-भाव से करना पड़ता था। इसका भास्वर उदाहरण है - सरमा जो

ऋग्वेद के 10/108वें सूक्त की ऋषिका हैं। पणियों ने आर्यों का गोधन चुराकर किसी अज्ञात स्थान पर रख दिया। इन्द्र की संदेशवाहिका बनकर सरमा, पणियों के पास पहुँचती है तो वे उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन देते हैं।

गोधन का एक अंश देने का लालच, परन्तु वह तो अडिग ही रहती है। अन्त में उसे अपनी बहिन बनाने का प्रस्ताव भी रखते हैं इसको भी सरमा अस्वीकार कर देती है-

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदरङ्गिरसश्च घोराः।

इसी प्रकार की हृदय विदीर्ण करने वाली बात उर्वशी पुरुरवा से कहती है कि स्त्री का हृदय तो भेड़िये के समान होता है, वह कोई सम्बन्ध नहीं जानती । यद्यपि इसके अनेक भ्रान्त और मिथ्या अर्थ प्रचारित किये जाते हैं परन्तु इस कटूक्ति का मन्तव्य उच्च कोटि का है-विरह-विदग्ध पुरुरवा के मन में वैराग्य उत्पन्न करना। इस प्रकार वैयाक्तिक सम्बन्धों के ऊपर सामाजिक उद्देश्यों को प्रतिष्ठित करने वाली स्त्रियों की भी एक पूरी महनीय परम्परा है।

विश्ववारा – जो नारी स्वयं पापमुक्त होकर स्त्रियों में वैदिक धर्म का प्रचार करती हुई दूसरों को पाप से मुक्त करती है - उसे 'विश्ववारा' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। विश्ववारा ने स्वयं यज्ञ किये, दूसरों को भी वैसा करने का उपेदश दिया। इनके मन्त्रों में दाम्पत्य सुख की विशेष प्रार्थना है।

शश्वती – 8/1 शश्वती बुद्धि का पर्याय है - जो जीवात्मा के साथ शाश्वतरूप में स्थित रहे। उस बुद्धि को शश्वती कहा जाता है। शश्वती ने नारी को बुद्धि का प्रतीक और पुरुष को आत्मा। बुद्धि से ही आत्मा सुशोभित होती है। पति पत्नी सम्बन्ध की महत्ता इनके सूक्त की वैशिष्ट्य है। इसके अतिरिक्त गोधा, यमी, इन्द्राणी, शची, श्रद्धा, उर्वशी आदि अनेक ऋषिकायें बौद्धिक परम्परा को अग्रेसारित करती रही हैं।

श्रद्धा – 10/151वें सूक्त की ऋषिका हैं। श्रद्धा का त्याग कर जीवन की सभी धारायें दुःखदायिनी होती हैं।

देवता तथा मनुष्य श्रद्धा की आराधना करते हैं। उपासकों के निश्चय का कारण श्रद्धा ही है। श्रद्धा का आनुकूल्य ही वैभव-प्राप्ति का साधन है। प्रातः मध्याह्नकाल एवं सायंकाल श्रद्धा ही हमारे द्वारा आहूत होती है।[8]

उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में कई आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर आध्यात्मिक उन्नति में लगी रहती हैं, इन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता है। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ वेदाध्ययन करतीं, काव्य रचना करतीं, त्याग तथा तपस्या के द्वारा ऋषिभाव को प्राप्त करके मन्त्रों का साक्षात्कार भी कर लेती थीं। घोषा, रोमशा, विश्ववारा, अपाला, लोपामुद्रा, सूर्या आदि के मंत्रों में तेजस्विता और चिन्तन का अपूर्व समन्वय है।

सूर्या का विवाह सूक्त ऋ. 10/85 और अथर्ववेद काण्ड (14) दोनों में प्रकट होता है।

हे सूर्ये ! तुम जाकर अपने पति के घर की स्त्री बनो।

'यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि'

यहाँ वशिनी शब्द स्त्रियों के प्रति गौरव का सूचक प्रतीत होता है। साम्राज्ञी शब्द का प्रयोग स्त्री को अधिकार सम्पन्न बनाता है।

पति के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करते हुए अमरता के मार्ग पर दृढ रहें।

साम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु साम्राज्ञ्युत देवतृषु।
ननान्दुः साम्राज्ञयेधि साम्राज्ञ्युत श्वश्रवा.।।

पुरुष तत्त्व मैं प्रकृति हो तुम, सामवेद मैं पुण्य ऋचा तुम

मैं आकाश धरित्री तुम मेरी, आओ - बन्धे विवाहसूत्र में हम तुम।[9]

माता पिता अपनी कन्या को पति के घर जाते समय बुद्धिमत्ता और विद्याबल उपहार में दें । माता-पिता को चाहिए कि वे अपनी कन्या को दहेज दें तो वह ज्ञान का दहेज हो।

वेदों मे स्त्री यज्ञीय है - अर्थात् यज्ञ समान पूजनीय वेदों में नारी को ज्ञान देने वाली सुख-समृद्धि लाने वाली, विशेष तेजसम्पन्ना, देवी, विदुषी, सरस्वती, इन्द्राणी, उषा-सबको प्रबुद्ध करने वाली, इत्यादि अनेक आदर सूचक नाम दिए गये हैं।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।

सुधा त्वं अक्षरे नित्येत्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।।

वैदिककालीन स्त्रियों की श्रेष्ठ और उच्च भूमिका हमें गौरवान्वित करती है। स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी। अध्ययन-अध्यापन, घर पविार, तथा सभाओं में और संघर्षमय युद्धों आदि में स्त्रियों का समान योगदान रहता था। प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों के उन्नति और प्रगति करने की स्वतंत्रता थी, इसीलिए उस काल में नारी की प्रतिभा तथा ज्ञान अपूर्व था। उस काल की स्त्रियाँ गणित, वैद्यक, संगीत, नृत्य और शिल्प का अध्ययन करती थीं। क्षत्रिय स्त्रियाँ धनुर्वेद, अर्थात् युद्धविद्या की भी शिक्षा ग्रहण करती थीं तथा युद्ध में भी भाग लेती थीं।

वेदों में स्त्री के लिए नारी,योषा,जाया,ग्ना (देवपत्नी),स्त्री,सुन्दरी (सूनरी),वधू , पुरन्धि्र, दम्पती, पत्नी, सपत्नी,माता,सती,स्नेहा, दुहिता, कन्या,गौरी,अमाजुर, भगिनी,स्वसा, श्वश्रू,ननान्दृ, भ्रातृजाया आदि अनेक संज्ञायें यह संकेत करती हैं कि स्त्री की समाज में विविध प्रकार की भूमिकाएं रही हैं ।ऋषिका रूप अत्यधिक उदात्त रूप था।

पाद टिप्पण

1. देवेर्भिनः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे।। ऋग्वेद - 10/100/1
2. ऋग्वेद - 10/63/10
3. ऋग्वेद - 8/91/1
4. इयं वामह्वे श्रृणुत मे मह्यं अश्विना पुत्रायेव पितरा महा शिक्षतम्.... ऋग्वेद - 10/39/6
5. ऋग्वेद 10/40/10
6. ऋग्वेद - 10/125/3
7. ऋग्वेद 10/125/
8. ऋग्वेद - 10/15/4-5
9. ऋग्वेद 2/71